

सत्यनारायण सिन्हा

बनाम

मेसर्स एस. लाल एंड कंपनी (प्राइवेट) लिमिटेड

10 सितंबर, 1973

[पी. जगनमोहन रेड्डी और एस. एन. द्विवेदी, न्यायमूर्तिगण ]

*प्रथा--भारत का संविधान, 1950, अनुच्छेद 226-उच्च न्यायालय का रिट क्षेत्राधिकार--  
इसका प्रयोग पीड़ित व्यक्ति के अलावा अन्य व्यक्ति भी कर सकते हैं।*

प्रथम उत्तरदाता ने उच्च न्यायालय में एक विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर कर अपीलकर्ता को खनन पट्टा दिए जाने को चुनौती दी, इस आधार पर कि यह उसके खनन पट्टा प्राप्त करने के अधिकार का प्रत्यक्ष उल्लंघन था, उस क्षेत्र के लिए जिसके लिए उसने आवेदन किया था और जो उसके अनुसार, उस क्षेत्र का हिस्सा था जिसके लिए अपीलकर्ता को पट्टा दिया गया था। लेकिन वास्तव में, प्रथम उत्तरदाता का आवेदन उस क्षेत्र के किसी भी हिस्से के संबंध में नहीं था जिसके लिए अपीलकर्ता को खनन पट्टा दिया गया था। यद्यपि अपीलकर्ता को कार्यवाही में पक्षकार बनाया गया था, वह उपस्थित नहीं हुआ क्योंकि उसे नोटिस नहीं भेजे गए थे। उच्च न्यायालय ने याचिका को इस आधार पर स्वीकार कर लिया कि खान और खनिज (विनियमन और विकास) अधिनियम, 1957 की धारा 31 और खनिज रियायत नियम, 1960 के नियम 58 और 59 का उल्लंघन हुआ था।

इस न्यायालय में अपील स्वीकार करते हुए,

अभिनिर्धारित किया: प्रथम उत्तरदाता का पट्टे के विषय-वस्तु में कोई हित नहीं था, और याचिका विचारणीय नहीं थी। [618 जी-एच]

यद्यपि यह तर्क उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं उठाया गया था क्योंकि अपीलकर्ता उच्च न्यायालय में उपस्थित नहीं हुआ था, फिर भी यह न्यायालय अपील में न केवल निर्णय की वैधता का निर्धारण कर सकता है, बल्कि इसके समक्ष उठाए गए किसी भी बिंदु का निर्धारण करने का अधिकार रखता है, जैसे कि क्या अपील सक्षम है, क्या किसी पक्ष को याचिका प्रस्तुत करने का अधिकार है और क्या याचिकाकर्ता संधार्य था। सामान्यतः, अनुच्छेद 32 या अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने का आधार स्वयं याचिकाकर्ता का व्यक्तिगत अधिकार होता है, यद्यपि *बंदी प्रत्यक्षीकरण* या *अधिकार पृच्छा* के रिट के मामलों में, इस नियम में शिथिलता बरती जा सकती है। उन व्यक्तियों के संबंध में जो पीड़ित नहीं हैं और जो उच्च न्यायालय या इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान करना चाहते हैं, मामला अंततः न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है और उस अधिकार या हित की प्रकृति और सीमा पर निर्भर करता है जिसका उल्लंघन हुआ है और क्या उल्लंघन याचिकाकर्ता को किसी प्रकार से प्रभावित करता है। [619 ए-बी, डी, जी-एच]

वर्तमान मामले में, प्रथम उत्तरदाता ने केवल अपने अधिकार के प्रत्यक्ष उल्लंघन का आरोप लगाया था, लेकिन यह पाया गया कि उनके किसी भी अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। वह न तो पक्षकार थे और न ही पीड़ित या प्रभावित व्यक्ति थे, इसलिए याचिका *दायर करने का उनका कोई अधिकार नहीं था*। [620 बी-सी]

*इब्राहिम अबूबाकर और एक अन्य बनाम निष्कासित संपत्ति के महारक्षक, [1952] एस.सी.आर. 696, चिरंजीत लाल चौधरी बनाम भारत संघ। [1950] एस.सी.आर. 869, उड़ीसा राज्य बनाम मदन गोपाल रंगटा, [1952] एस.सी.आर. 28, कलकत्ता गैस कंपनी (स्वामित्व) लिमिटेड बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य [1962] पूरक 3 एस.सी.आर. 1. गोड्डे वेंकटेश्वर राव बनाम (आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य [1966] 2 एस.सी.आर. 172 और आर. बनाम थेम्स*

दंडाधिकारी न्यायालय एक्स. पी. ग्रीनबाम, [1957] 55 एल.सी.आर. 129— यार्डली सोर्स बुक ऑफ इंग्लिश एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ, 1970, पृष्ठ 228 में उद्धृत, संदर्भित।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: दीवानी अपील सं. 2572 (एन)/ 1972।

पटना उच्च न्यायालय के 4 अप्रैल 1972 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध प्रमाण पत्र द्वारा अपील, दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 1121/1969 में।

अपीलकर्ता के लिए बी. पी. सिंह।

उत्तरदाता सं. 2 और 6 के लिए लाल नारायण सिन्हा, भारत के सॉलिसिटर जनरल और एस. पी. नायर

उत्तरदाता सं. 3-5 के लिए डी. गोबर्धन

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया।

जगनमोहन रेड्डी, न्यायमूर्ति। अपीलकर्ता को बिहार राज्य (उत्तरदाता 3) द्वारा दिनांक 30 अगस्त, 1969 को एक खनन पट्टा प्रदान किया गया था। केंद्रीय सरकार (उत्तरदाता 2) की पूर्व स्वीकृति से, 1999.634 एकड़ क्षेत्र में एपैटाइट नामक खनिज के खनन के लिए यह पट्टा दिया गया था। उत्तरदाता 1 ने 15 सितंबर, 1969 को एक विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर की, जिसमें पट्टे को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि उसने पहले 22 मार्च, 1965 को सिंहभूम जिले के कुछ गांवों में 280.62 एकड़ क्षेत्र में खनन पट्टे के लिए आवेदन किया था, जो अपीलकर्ता को दिए गए पट्टे में शामिल था, लेकिन राज्य सरकार द्वारा वैधानिक अवधि के भीतर कोई आदेश पारित न किए जाने के कारण आवेदन अस्वीकृत माना गया। इसके बाद उसने केंद्रीय सरकार के समक्ष एक पुनरीक्षण याचिका दायर की, जिसमें राज्य सरकार से टिप्पणी मांगी गई थी। राज्य सरकार ने केंद्र सरकार को सूचित किया कि वह स्वयं इस क्षेत्र में कार्य करना चाहती है और इसी कारण उसने प्रथम उत्तरदाता सहित इस क्षेत्र के लिए प्राप्त सभी आवेदनों को

अस्वीकार कर दिया था। यह टिप्पणी प्राप्त होने पर केंद्र सरकार ने प्रथम उत्तरदाता की पुनरीक्षण याचिका को अस्वीकार कर दिया।

ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता ने समाचार पत्रों में प्रकाशित एक विज्ञापन के आधार पर अन्य लोगों के साथ सिंहभूम जिले के खजुरदारी गांव में 4.1 वर्ग मील क्षेत्र में फॉस्फेट युक्त चट्टान (एपैटाइट) के खनन पट्टे के लिए आवेदन किया था। लेकिन सभी आवेदन खारिज कर दिए गए क्योंकि राज्य सरकार ने तब तक फॉस्फेट युक्त क्षेत्रों में सार्वजनिक क्षेत्र में खनन करने का निर्णय ले लिया था। बाद में, हालांकि, तीसरे उत्तरदाता ने महसूस किया कि इस तरह के उद्यम को राज्य सरकार की तुलना में एक निजी पक्ष द्वारा बेहतर ढंग से किया जा सकता है, क्योंकि जमाव की प्रकृति बिखरी हुई है, और सार्वजनिक क्षेत्र के माध्यम से इसकी केंद्रित और कुशल निगरानी संभव नहीं हो सकती है, इसलिए उसने संबंधित क्षेत्र को निजी क्षेत्र को सौंपने का निर्णय लिया। तदनुसार, केंद्र सरकार से अनुमति मांगी गई और समाचार पत्रों में एक विज्ञापन प्रकाशित किया गया ताकि उन इच्छुक पक्षों को सामान्य जानकारी दी जा सके जो निम्न श्रेणी के एपैटाइट को उन्नत करने के लिए एक लाभकारी संयंत्र स्थापित करने के इच्छुक हों, ताकि इसका उपयोग फॉस्फेटिक उर्वरक के उत्पादन के लिए किया जा सके और जो 40 से 50 लाख रुपये तक का निवेश करने में सक्षम हों। आर्थिक रूप से सक्षम बताए जाने वाले अपीलकर्ता ने एपैटाइट को उन्नत करने के लिए एक लाभकारी संयंत्र स्थापित करने की योजना प्रस्तुत की। अपीलकर्ता की वित्तीय स्थिति को देखते हुए, उसके आवेदन को केंद्र सरकार को भेजा गया। केंद्र सरकार ने इस अनुशंसा को स्वीकार कर लिया और निम्नलिखित शर्तों पर खनन पट्टा प्रदान करने का निर्देश दिया:

"खनिज विकास के हित में केंद्र सरकार, खनिज रियायत नियम, 1960 के नियम 58 के उप-नियम (2) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राज्य सरकार को उक्त क्षेत्र पर डॉ. सत्य

नारायण सिन्हा को अपाटाइट खनन पट्टा प्रदान करने के लिए अधिकृत करती है, बिना खनिज रियायत नियम, 1960 के उक्त नियम 58 के उप-नियम (1) में निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए।

इसके अतिरिक्त, खान और खनिज (विनियमन और विकास) अधिनियम, 1957 की धारा 31 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, केंद्र सरकार एतद्वारा राज्य सरकार को डॉ. सिन्हा को उक्त क्षेत्र पर खनन पट्टा प्रदान करने के लिए अधिकृत करती है, जो एक संकुचित खंड नहीं है।

केंद्र सरकार ने खान और खनिज (विनियमन और विकास) अधिनियम, 1957 की धारा 6(1) के परंतुक द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राज्य सरकार को उक्त अधिनियम की धारा 6(1) और (बी) में निर्धारित 10 वर्ग मील की सीमा से अधिक क्षेत्र में डॉ. सिन्हा को एपिटाइट खनन पट्टा प्रदान करने के लिए अधिकृत किया।

केंद्र सरकार द्वारा अपीलकर्ता को खनन पट्टा प्रदान करने की स्वीकृति की जानकारी मिलते ही, प्रथम उत्तरदाता ने राज्य सरकार से स्थगन हेतु आवेदन किया। यद्यपि वह आवेदन अस्वीकृत कर दिया गया, फिर भी उन्होंने कई अन्य प्रयास किए, लेकिन कोई सफलता नहीं मिली। अंतिम पुनरीक्षण आवेदन 17 नवंबर, 1970 को खनिज रियायत नियमों (जिसे आगे 'नियम' कहा गया है) के नियम 54 के तहत द्वितीय उत्तरदाता के समक्ष दायर किया गया था, जिस पर 23 नवंबर, 1971 को एक आदेश पारित किया गया था। यह आदेश, जैसा कि प्रथम उत्तरदाता द्वारा प्रकट किया गया है, उत्तरदाता ने अपने पूरक प्रति-शपथपत्र में दर्शाया है कि केंद्र सरकार ने नियमों के नियम 55 के तहत अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राज्य सरकार के आदेशों को अपास्त कर दिया और उसे आगे विचार करने और उचित आदेश को

चार महीने की अवधि के भीतर पारित करने का निर्देश दिया, क्योंकि राज्य सरकार ने प्रथम उत्तरदाता के आवेदन पर विचार करने में सही प्रक्रिया का पालन नहीं किया था।

इस स्तर पर हम यह बताना चाहेंगे कि प्रथम उत्तरदाता द्वारा दायर विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में यद्यपि अपीलकर्ता एक पक्षकार था, ऐसा प्रतीत होता है कि वह उपस्थित नहीं हुआ और कार्यवाही *एकतरफा* थी। अपीलकर्ता का कहना है कि उसे कोई नोटिस नहीं भेजा गया था और न ही नोटिस भेजे जाने का कोई प्रमाण था, क्योंकि न तो पंजीकृत नोटिस भेजने वाले लिफाफे और न ही पावती कार्ड न्यायालय को लौटाए गए थे। इसलिए उसे सुनवाई का अवसर नहीं मिला। निस्संदेह बिहार राज्य और केंद्र सरकार ने याचिका का विरोध किया था, लेकिन उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि खान और खनिज (विनियमन और विकास) अधिनियम, 1957 (जिसे आगे अधिनियम कहा गया है) की धारा 31 के तहत विशेष मामलों में नियमों में छूट के लिए आवश्यक शर्तें पूरी नहीं होती हैं। नियमों के अनुच्छेद 58 और 59 का अनुपालन अपीलकर्ता को खनन पट्टा प्रदान करने की स्वीकृति देते समय नहीं किया गया था। इस दृष्टिकोण से इसने याचिका स्वीकार कर ली और अपीलकर्ता के पक्ष में पट्टा अभिखंडित कर दिया।

हमारे समक्ष अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि अपीलकर्ता को न्यायालय के समक्ष यह तर्क देने का अवसर नहीं मिला कि प्रथम उत्तरदाता द्वारा दायर विनिर्दिष्ट आदेश याचिका विचारणीय नहीं है, क्योंकि वह पीड़ित व्यक्ति नहीं है, क्योंकि जिस क्षेत्र के लिए प्रथम उत्तरदाता ने खनन पट्टा देने के लिए आवेदन किया था, वह अपीलकर्ता को दिए गए क्षेत्र में शामिल नहीं था। वे आगे तर्क देते हैं कि बिहार राज्य ने केंद्र सरकार को पट्टा देने की सिफारिश करते समय कारण बताए थे, जिनमें से कम से कम एक कारण, जैसा कि केंद्र सरकार

के आदेश से स्पष्ट है, स्वीकृत किया गया था। उनके अनुसार, अधिनियम की धारा 31 और नियमों के नियम 58 और 59 के प्रावधानों का कोई उल्लंघन नहीं है।

केन्द्र सरकार की ओर से विद्वान सॉलिसिटर-जनरल ने अपीलकर्ता को खनन पट्टा दिए जाने का समर्थन इस आधार पर किया कि नियमों का नियम 59 इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता, क्योंकि तीसरे उत्तरदाता ने अपीलकर्ता को आवंटित क्षेत्र को आरक्षित करने का कोई ठोस निर्णय नहीं लिया था, जो उस नियम की प्रयोज्यता की एक आवश्यक शर्त है। यदि वह नियम लागू नहीं होता, तो उनका निवेदन है कि उसमें उल्लिखित नियम 58 में निर्धारित प्रक्रिया का पालन करना आवश्यक नहीं है। उनका यह भी निवेदन है कि यदि नियम 59 लागू भी होता है, तो केंद्रीय सरकार ने अधिनियम की धारा 31 के अनुसार नियमों में छूट देने के कारण दर्ज किए हैं।

जहां तक तीसरे उत्तरदाता - बिहार राज्य - का संबंध है, उसने हमारे समक्ष अपने रुख में पूर्ण परिवर्तन किया है। आवेदन आमंत्रित करने और अपीलकर्ता के पक्ष में पट्टा की सिफारिश करने के बाद, और उसे ऐसी स्थिति में डालने के बाद जहां उसे भारी खर्च उठाना पड़ा, अब यह तर्क देना चाहता है कि पट्टा देना अमान्य है। यहां तक कि प्रथम उत्तरदाता ने भी, जब उसे पता चला कि जिस क्षेत्र के लिए उसने पट्टे के लिए आवेदन किया था, वह अपीलकर्ता के पट्टे में शामिल नहीं है, तो उसने मामले में अनुपस्थित रहना ही बेहतर समझा, लेकिन राज्य सरकार पट्टे की वैधता को चुनौती देना चाहती है, जो उसने उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं किया था।

इसमें कोई संदेह नहीं है, जैसा कि उच्च न्यायालय ने बताया है, कि जहां केंद्र सरकार नियमों में ढील देकर किसी भी मामले में किसी भी अन्वेषण अनुज्ञप्ति या खनन पट्टे के अनुदान, नवीनीकरण या हस्तांतरण को, या किसी खनिज की खोज या खनन के उद्देश्य से किसी खान के संचालन को, अधिनियम की धारा 13 के तहत बनाए गए नियमों में निर्धारित

शर्तों से भिन्न शर्तों पर अधिकृत करना चाहती है, तो वह लिखित में कारण दर्ज करके ऐसा कर सकती है। क्या ऐसे कोई कारण पट्टे के अनुदान को उन शर्तों से भिन्न शर्तों पर अधिकृत करने वाले आदेश में दर्ज किए गए हैं जो धारा 13 के तहत बनाए गए नियमों में निर्धारित हैं? इस मामले में अधिनियम की धारा 13 से हमारा कोई लेना-देना नहीं है, क्योंकि हमारी राय में, चूंकि विनिर्दिष्ट आदेश याचिका एक ऐसे व्यक्ति द्वारा दायर की गई है जो पीड़ित व्यक्ति नहीं है, इसलिए यह संधार्य नहीं है।

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, उत्तरदाता 2 और 3 ने स्वीकार किया है कि प्रथम उत्तरदाता द्वारा किया गया आवेदन उस क्षेत्र के संबंध में नहीं था जो अपीलकर्ता को आवंटित किया गया है और परिणामस्वरूप प्रथम उत्तरदाता का पट्टे के विषय-वस्तु में कोई हित नहीं था। यद्यपि यह तर्क उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं उठाया गया था, और हमारे द्वारा उल्लेखित परिस्थितियों में इसे उठाया भी नहीं जा सकता था, क्योंकि अपीलकर्ता उपस्थित नहीं हुआ था, फिर भी यह न्यायालय अपील में न केवल निर्णय की वैधता का निर्धारण कर सकता है, बल्कि इसके समक्ष उठाए गए किसी भी बिंदु का निर्धारण करने का अधिकार क्षेत्र रखता है, जैसे कि क्या अपील सक्षम है, क्या किसी पक्ष को याचिका प्रस्तुत करने का अधिकार है और क्या याचिका संधार्य है आदि। देखें *इब्राहिम अबू बकर* और एक *अन्य* बनाम *निष्कासित संपत्ति के महारक्षक*(<sup>1</sup>)। *चिरंजीत लाल चौधरी बनाम भारत संघ* (<sup>2</sup>) में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अनुच्छेद 32 के अंतर्गत प्रवर्तनीय अधिकार सामान्यतः उसी याचिकाकर्ता का अधिकार होना चाहिए, जो उस अधिकार के उल्लंघन की शिकायत करता है और राहत प्राप्त करने के लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटाता है। संविधान के अनुच्छेद 226 के

1 (1) [1952] एस . सी . आर . 696;

2 1950] एस . सी . आर. 869.

संबंध में, *उड़ीसा राज्य बनाम मदन गोपाल रंगटा* (3) वाद में यह निर्धारित किया गया था कि अधिकार का अस्तित्व संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायालय के क्षेत्राधिकार के प्रयोग का आधार है। *कलकत्ता गैस कंपनी (मालिक) लिमिटेड बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य* (4) मामले के अनुसार, जिस अधिकार का उल्लेख इस न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 32 या अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार के प्रयोग के आधार के रूप में किया था, वह सामान्यतः याचिकाकर्ता का व्यक्तिगत अधिकार होता है, हालांकि *बंदी प्रत्यक्षीकरण* या *अधिकार पृच्छा* के लिए याचिका जैसी कुछ याचिकाओं के मामले में इस नियम में ढील या संशोधन करना पड़ सकता है। उस समय के न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने उस मामले में टिप्पणी की थी:

"अनुच्छेद 226 उच्च न्यायालय को किसी भी अधिकार को लागू करने के लिए उसमें उल्लिखित प्रकृति के निर्देश और याचिकाएं जारी करने की व्यापक शक्ति प्रदान करता है। भाग III द्वारा प्रदत्त अधिकारों के लिए या किसी अन्य उद्देश्य के लिए। अतः यह स्पष्ट है कि मौलिक अधिकारों का दावा करने वालों के अलावा अन्य व्यक्ति भी इसके अंतर्गत राहत पाने के लिए न्यायालय में जा सकते हैं।

*गोड्डे वेंकटेश्वर राव बनाम आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य* (5) मामले में उपरोक्त अंश का हवाला देते हुए, इस मामले में निर्णय देने वाले विद्वान न्यायमूर्ति ने पृष्ठ 181 पर यह भी टिप्पणी की:

"व्यक्तिगत अधिकार का स्वामित्व हित से संबंधित होना आवश्यक नहीं है: यह किसी न्यासी के हित से भी संबंधित हो सकता है। इसके अलावा, असाधारण मामलों में, जैसा कि "सामान्य" शब्द से स्पष्ट है, किसी प्राधिकारी के किसी कार्य या चूक से

3 [1952] एस . सी . आर. 28.

4 [1962] पूरक, 3 एस. सी. आर. 1

5 [1966] 2 एस. सी. आर. 172

प्रतिकूल रूप से प्रभावित व्यक्ति विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर कर सकता है, भले ही उसका उस विषय वस्तु में कोई स्वामित्व या न्यासी हित न हो।"

ऐसे व्यक्तियों के संबंध में जो अजनबी हैं और उच्च न्यायालय या इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान करना चाहते हैं, कभी-कभी कठिनाई उत्पन्न होती है क्योंकि जिस अधिकार या हित का उल्लंघन हुआ है, उसकी प्रकृति और सीमा, और क्या उल्लंघन किसी न किसी तरह से ऐसे व्यक्तियों को प्रभावित करता है, इस पर विचार करना आवश्यक होता है। इस पहलू पर, ऐसे सिद्धांतों का कोई स्पष्ट प्रतिपादन नहीं है जिनके आधार पर न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करेगा।

इंग्लैंड में भी न्यायालयों का यही मत रहा है कि जब आवेदन किसी पक्षकार या पीड़ित व्यक्ति द्वारा किया जाता है, तो न्यायालय *न्याय के हित में* आवेदक के पक्ष में हस्तक्षेप करेगा, और जब यह किसी अजनबी द्वारा किया जाता है, तो न्यायालय विचार करेगा कि क्या जनहित में हस्तक्षेप आवश्यक है। दोनों ही मामलों में यह एक ऐसा विषय है जो अंततः न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है: (देखें *आर. बनाम थेम्स दंडाधिकारी न्यायालय, एक्स पी. ग्रीनबाम* (1)।

हालांकि, इस वाद में, प्रथम उत्तरदाता ने पट्टे के अनुदान को *न्यायोचित दायित्व* के आधार पर चुनौती नहीं दी है, बल्कि 280.62 एकड़ भूमि पर खनन पट्टा प्राप्त करने के अपने अधिकार के प्रत्यक्ष उल्लंघन के आधार पर चुनौती दी है, जिसके लिए अपीलकर्ता को अन्य क्षेत्र के साथ पट्टा दिया गया था। चूंकि अब यह पाया गया है कि प्रथम उत्तरदाता के ऐसे किसी अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है, इसलिए उसका कोई *अधिकार* नहीं है। वह न तो पक्षकार

---

1) (1957) 55 एल.सी.आर. 129—यार्डली, इंग्लिश एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ स्रोत पुस्तक, 1970, पृष्ठ 228 में उद्धृत।

है और न ही पीड़ित या प्रभावित व्यक्ति है, और परिणामस्वरूप उच्च न्यायालय में उसकी विनिर्दिष्ट आदेश याचिका संधार्य नहीं है।

इस संक्षिप्त आधार पर, यह अपील स्वीकार की जाएगी और प्रथम उत्तरदाता द्वारा उच्च न्यायालय में दायर विनिर्दिष्ट आदेश याचिका खारिज की जाएगी। अपीलकर्ता को केवल बिहार राज्य के विरुद्ध अपना खर्च वहन करना होगा।

वी.पी.एस.

*अपील स्वीकार की गई।*

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।